JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

माटी हो गयी सोना : बलिदान की अद्भुत गाथाएँ

सुषमा ठाकुर,
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा,
कु.वि.आ.डी.ए.वी महिला महाविद्यालय, करनाल (हरियाणा)

'माटी हो गई सोना' कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर के सत्रह–अमर अक्षर चित्रों का बहुमूल्य संग्रह है जो बल और बलिदान की गाथा गाते, सुनाते प्रतीत होते हैं। इस संग्रह के रेखाचित्रों में से अधिकांश पाठक की आँख नम कर देने वाले अति भावपूर्ण एवं मार्मिक शब्द चित्र हैं। यह संग्रह लेखक द्वारा इतिहास के उन बलिदानी वीरों को समर्पित है जिनके पास विकल्प के रूप में सुविधा से परिपूर्ण मार्ग भी था पर उन्होंने चुना–त्याग एवं बलिदान का वह मार्ग जिस पर केवल कांटे थे और कांटों पर चलकर उन्होंने जीवनभर स्वयं को लहूलुहान किया। संभवतः कुछ दुनियावी लोग उन्हें नासमझ और अहंकारी समझेंगे पर अधिकांश की दृष्टि में वे स्वाभिमानी महान इतिहासपुरुष थे जो अपनी शर्तों पर जिए, भौतिक साधनों/ऐश्वर्य की कमी तो उन्हें हुई पर मानसिक, आत्मिक ऐश्वर्य उन्होंने कभी नहीं खोया।

लेखक की प्रस्तुत कृति महान राजपूत राजा महाराणा प्रताप और रूस की महान क्रांति के पिता त्रात्स्की को समर्पित है, दोनों ही को जीवन के लंबे सफर पर चलते हुए न सुख मिला, न सफलता, एक यदि दिल्ली के तख्त से समझौता कर लेता तो भौतिक सुख–सुविधाओं से संपन्न जीवन जीता और दूसरा लेनिन के बाद रूस की पतवार संभालने वाले पद को पा सकता था लेकिन दोनों ने बुद्धि की बात नहीं सुनी, भावुक नासमझ थे, अपने उसूलों से, समझौता नहीं कर पाए, दिल की, आत्मा की आवाज़ को अनसुना नहीं कर पाए।....यही कारण है **''ये मानव, वैज्ञानिक सत्य है कि, कभी के मर चुके, पर एक आध्यात्मिक सत्य है कि आज भी वे जीवित हैं और सदा जीवित रहेंग।''**[1]

प्रस्तुत सत्रह रेखाचित्रों में पहली अत्यंत मार्मिक, हृदय को गहराइयों तक झकझोर देने वाली अद्भुत रचना है – ''बयालीस के ज्वार की लहरों में।' भारत की हर पीढ़ी के हर

नागरिक को यह रचना पढ़नी चाहिए। अंग्रेज़ों के खिलाफ़ 1942 में होने वाली देशव्यापी बगावत की कुछ झलकियाँ रचनाकार ने इस रचना के माध्यम से दिखाई हैं जो उस समय के भारत की एक तस्वीर हमारे समक्ष रखने में सक्षम हैं। बिहार की राजधानी पटना की गलियों में प्रभातफेरी करते देशभक्त विद्यार्थियों का अद्‌भुत बलिदान भारतीय जनता के लिए चिरस्मरणीय है, उसी की एक झलक के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध किया है कि स्वतंत्रता हमें भीख में नहीं मिली, बड़े नेताओं, क्रांतिकारियों के साथ–साथ युवा विद्यार्थी तक जब आज़ादी के उस महायज्ञ में अपनी बलि देने को तैयार हो गए थे, सैंकड़ों युवाओं ने ही नहीं किशोरों ने भी अपने प्राणों की आहुति देने में पूर्ण तत्परता दिखाई थी तब कहीं जाकर देश आज़ाद हुआ था। हमारे पूर्वजों ने आज़ादी की बहुत बड़ी कीमत चुकाई थी फिर कहीं जाकर इसे पाया था। उस पूज्य बलिदान को आज आज़ाद भारत में रहने वाले हर नागरिक को स्मरण रखना ही चाहिए।

रणथम्भौर के राजा हमीर ने अपनी शरण में आए एक बहादुर मुसलमान सिपाही की रक्षा के लिए बादशाह अलाउद्दीन खिलजी से लोहा लिया। इतिहास की यह कथा भी अविस्मरणीय है। मुसलमान सिपाही माहमशाह की रक्षा के लिए रणथम्भौर का बलिदान, राजा हमीर का शरणागत के लिए जान की बाज़ी लगा देने का जज़्बा और अपने राजा की भावना और निश्चय के पोषण हेतु मंत्रियों, सिपाहियों का बलिदान, स्त्रियों का स्वैच्छिक जौहर रणथम्भौर को अमर बनाता है और इतिहास के पन्नों पर लिखी इसी स्वर्णिम कथा को लेखक ने बयान किया है – ''लाल अंगारों की उस मुसकान में!' शीर्षक रचना के अंतर्गत। लेखक ने लिखा है – **''ओह, रणथम्भौर की ये शहादतें, ये बलिदान, ये कुर्बानियाँ; जो वीरता के इतिहास में अपना जोड़ नहीं रखतीं और आज सदियों के बाद भी जिनसे अगरबत्तियों–सी जीवन के सौरभ की भीनी एवं प्रेरक गन्ध आ रही है।''**[2]

मृत्युंजय शहीद सरदार अजीत सिंह की अद्‌भुत शहादत की अनोखी कथा भी लेखक ने कही है – 'स्वतंत्रता और संहार के उन अद्‌भुत क्षणों में' शीर्षक रचना के अंतर्गत। लेखक शहीदों की कुछ श्रेणियों का ज़िक्र करते हुए कहता है – **''हमारे राष्ट्र के उन शहीदों का शत–शत अभिनन्दन, जो हँसते–हँसते जीवन के मोह को जीतकर फाँसी चढ़ गये और गोलियाँ पी गये, पर उनकी मौत उनके अधीन न थी। उनकी बलिहारी कि उन्होंने मृत्यु को मित्र बनाया; उसके भय को उन्होंने जीत लिया, आत्मसात कर लिया, पर जिनकी बात मैं कह रहा है, वे निराले ही शहीद थे। मृत्यु इनकी मित्र नहीं थी, दासी**

थी। वह उन्हें देखती रही, पर पास न आ सकी और जब उन्होंने चाहा कि वह आये, तो वह झिझकी पर रुक न सकी।''[3] ...सरदार अजीत सिंह भारत माँ के विलक्षण सपूत थे। अंग्रेज़ों के खिलाफ़ उनकी लड़ाई देश के बाहर चली, अंग्रेज़ उनसे घबराते थे। 1943 में अमरीकी रक्षा पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर अंग्रेजों को सौंप दिया। जर्मनी की काल कोठरी में बंद सरदार अजीत सिंह अस्वस्थ हो गए पर आज़ादी के सपने को पूरा करने के लिए यह अद्भुत सिपाही सतत प्रयत्नशील रहा। अंततः देश की आज़ादी की सूचना और दिल्ली में सरदार का आगमन संभव हो पाया। लेकिन उन्हें अब आज़ाद भारत के दो टुकड़ों में विभाजन की खबर हुई तो वे हार गए और ऐसे विभाजित भारत को देखने से पूर्व उन्होंने मृत्यु को चुना।

'अखण्ड भारत की ब्रह्म–बेला में' हैदराबाद के प्रसिद्ध क्रांतिकारी पत्रकार तत्कालीन दैनिक 'इमरोज़' के सम्पादक शोइबुल्ला के अप्रतिम साहस और शहादत को बयां करता रेखाचित्र है। लेखक ने शोइबुल्ला का परिचय कुछ यूं दिया है – **''वह एक वर्चस्वी पत्रकार था और उम्र पाता, तो उर्दू की पत्रकारिता का गणेश शंकर विद्यार्थी होता...। उसकी पत्रकारिता का फूल उसकी विद्वता के सुनहरे गमले में न खिला था; वह खिला था उसके कलेजे की आग में – हाँ, आग का फूल ही थी उसकी पत्रकारिता।...शोइबुल्ला की विशेषता उस कलाकार में न थी, जो सबसे निराली बात, सबसे निराली भाषा में कहता है। उसकी विशेषता इनमें थी कि साम्राज्य लोलुप निज़ाम के फरमानों, उसके डिक्टेटर क़ासिम रिज़वी की राक्षसी हुंकारों और दैत्यवृत्ति रज़ाकारों की आतंक–भरी कारस्तानियों के नीचे जनगण की जो आवाज़ दबा दी गई थी वह अपने लेखों में उसे जनता की भाषा में उभारता था, उबारता था। हाँ, वह उस सबसे बड़ी आवाज़ की मूकता को वाणी देता था और कहूँ कि वह पत्रकारिता का प्रह्लाद था। प्रह्लाद जो लोहे के जलते खम्भे को हँसते–हँसते लिपटने को प्रस्तुत रहे।**[4]

किसी भी तरह का लोभ जनता की व्यथा की आवाज़ दबाने में कारगर न साबित हुआ तब इस पत्रकार की दोनों बाजुएँ काट दी गई थीं और कई गोलियाँ उसके शरीर को भेद गई थी पर वह न भयभीत हुआ, न उसने सच का साथ छोड़ा।

रेडियो पर गांधी जी के बलिदान की ख़बर पर जब शोइब रो पड़ा तब माँ के सांत्वना देने पर उसने कहा था कि यदि उसे वैसी मौत मिली तो वह रोएगी तो नहीं...और शायद जुबां पर सरस्वती ही विराजमान थी–वह भी ज़ालिम सत्ता द्वारा मौत की नींद सुला दिया

गया। साहसी इतना कि मरने से पूर्व बेहाल माँ और बेचैन पिता को उसने शांत भाव से कहा था – **''तीन गोलियाँ लगी हैं और चोट भी बहुत है, पर अब्बा, मैंने उफ़ नहीं की कि क़ातिल जान लें कि मैं एक बहादुर पठान हूँ।''**[5]

ऐसी शहादतें अमर हो जाती है। जुल्म करने वालों और उसके खिलाफ़ बुलंद सच्ची आवाज़ उठाने वालों के अंतर को बताते हुए लेखक लिखता है – ''आज कहाँ है हैदराबाद? उसके रज़ाकारी हाथ–पैर कट गये, निज़ामी सिर खण्डित हो गया और शोइबुल्ला? वह अब भी आकाश के तारों में बैठा–राजमहल के ठीक ऊपर, रात में रोज़ मुसकराया करता है।''[6]

स्वतंत्रता आंदोलन में अपना भरपूर योगदान देने वाली स्त्रियों में एक अमिट नाम सत्यवती बहन का भी है। लेखक ने उनका परिचय कुछ इस तरह दिया है – **''मैंने अपने जीवन में बहुत–कुछ देखा है और बार–बार देखा है, पर किसी नारी में मैंने कस्तूरबा – जैसा पत्नीत्व, सरोजिनी नायडू जैसा कवित्व, विजयालक्ष्मी पण्डित जैसा व्यक्तित्व, रमारानी जैन–जैसा व्यवस्थापकत्व और सत्यवती जैसा वीरत्व नहीं देखा।''**

दिल्ली के अहिंसात्मक युद्ध की वह सिपहसालार थी और गांधी जी उसकी ज़िन्दगी के सिपहसालार थे।''[7] गांधी जी से वे इस कदर प्रभावित थी कि उनके जेल जाने पर वे भी किसी–न–किसी जेल में बंद हो जाना चाहती। गाँधी जी के द्वारा उन्हें 'तूफानी' की उपाधि दी गई थी। सत्यवती बहन से अपनी मुलाकात और उनके बारे में जो देखा सुना, लेखक द्वारा अत्यंत भावनात्मक रूप से 'शहादत की ज़िन्दगी के तूफान में' संस्मरण में अभिव्यक्त किया गया है। अपनी जोशीली और ओजस्वी वाणी में वह जब जनसमूह का आह्वान करतीं तो जनसमूह में एक विद्युत सी पैदा कर देती थीं। जेलों में समय काटते और स्वतंत्रता के उस आंदोलन में अपने खाने–पीने की सुध न रखने पर ज़र्जर वे टी.वी. को चपेट में आ गई। धीरे–धीरे रुग्ण काया जर्जर होती गई पर उनके जोशीले भाषण और प्रेरक पत्र छपकर जनता को प्रेरणा देते रहे। गाँधी की भक्त सत्यवती बहन का देहावसान आज़ादी से पूर्व गाँधी जयंती को ही हुआ। अपनी रोग से जर्जर देह छोड़ने से पूर्व देहली के टी.बी. अस्पताल में उन्होंने अपनी कड़कती आवाज़ में लेखक से कहा था – ''मेरे प्यारे भाई, सिपाही का मरना क्या, जीना क्या? मरना भी यह, जीना भी यह कि उसका सिर न झुके। मैं जा रही हूँ, पर देख रही हूँ कि भारत से अंगरेज भी जा रहा है। मैंने अपना काम किया है, सबसे कह दो वे अपना काम करते रहें।'' लेखक ने

उन्हें अंतिम क्षणों तक जागरूक, निर्भीक, अशान्त, अक्लान्त कर्मयोगिनी कहा और कहा अहिंसक बलिदान माला का दीप्तिवान, सुमेरु।

देश की आज़ादी की लड़ाई में अपनी आहुति देने वाले ऐसे असंख्य वीर, वीरांगनाएँ हुए हैं ..... आज़ाद भारत की हर पीढ़ी उनकी ऋणी है, अपने ऐसे वीरों का सम्मान आज़ाद भारत के हर नागरिक का कर्तव्य और धर्म है।

विश्व भर में अन्याय, अत्याचार के खिलाफ़ आवाज़ उठी। यह आवाज़ उठाने वाले निस्संदेह विरले ही थे, असाधारण ही थे। न्याय की तरफ़दारी और जुल्म, शोषण के खिलाफ बिगुल बजाने का कार्य जिन दिलेरों ने किया, घटिया और शोषण की व्यवस्था में परिवर्तन का साहस जिन्होंने करने का जोखिम उठाया, उनमें से कुछेक की प्रेरक कहानियाँ भी इस संकलन में संकलित हैं। रूस में शासक रहे लुजेनोवस्की के समय के अंधकारमय युग का दृश्य दिखाते हुए लेखक अपनी रचना 'रूस के दमन–दावानल की उन लपटों में' में लिखता है – ''अहो! अत्याचार के साकार स्तूप से वे क़ज्ज़ाक सिपाही जिसे देखते पकड़ लाते, छर्रे से उसे भून डालते, संगीनों पर उछालते और चौराहों पर फेंक देते। जिसे चाहते लूट लेते, जिसका चाहते घर फूंक देते और जब चाहते सुन्दर युवतियों को पकड़ लाते और खुलेआम उनका सर्वस्व लुटते! लुजेनोवस्की यह सब सुनता, इसकी तारीफ़ करता और खुश होता। चारों ओर निर्लज्जता, पैशाविकता और अराजकता की तामसी तमिस्त्री छापी हुई थी।''[9] ....ऐसे अंधकारमय युग में प्राणों का सौदा करने वाले दुखी, पीड़ित कुछ युवकों की एक गुप्त समिति इस स्थिति पर विचार करने बैठी। लुजेनेवस्की की उनकी आँखों का काँटा था। इस जोखिम भरे कार्य को करने का जिम्मा एक बीस वर्ष की पतली–सी कुमारी ने लिया और बहुत दिलेरी से इस कार्य को कर भी दिखाया। बोरिसौगिलबुक के स्टेशन पर कज़्ज़ाक सिपाहियों के बीच मेरी नाम की उस नवयुवती ने लुजेनोवस्की को छाती और पेट में तीन गोलियाँ उतार दीं लेकिन अपनी ओर रिवाल्वर कर गोली चलाने को हुई ही थी कि पकड़ ली गई। हज़ार–हज़ार यातनाएँ सहकर भी उसने अपने साथियों का नाम नहीं बताया। मेरी को मिली–फांसी की सज़ा का रूस में बहुत विरोध हुआ फलस्वरूप उसकी फांसी उम्रकैद में परिवर्तित हो गई।

'अबिसीनिया के उस सूने शहर में' भी एक अत्यंत मार्मिक रचना है। सोलहवीं शताब्दी में इटली का अभिमान गरजा और उसने अपंग अबिसीनिया को परास्त कर दिया।

दूसरे महायुद्ध के फलस्वरूप अबिसीनिया की ये बेड़ियाँ कट गईं पर 1904 की एक घटना का ज़िक्र करते हुए लेखक ने बताया है कि युद्ध दो दिन से बंद था। अबिसीनिया के सिपाही एक शहर में डेरा डाले विश्राम कर रहे थे। गुप्तचर ने सरदार को इटली की फौज के अचानक आने की सूचना दी सरदार ने शहर को तबाही से बचाने के लिए बिगुल बजाकर खाली करवा दिया। सब सुरक्षित जगह को कूच कर गए, बस सरदार की पंद्रह साल की बेटी लाइना ने भागने से दृढ़ता के साथ इंकार कर दिया। इस नवयुवती ने जिस वीरता और दृढ़ता से क्रूर इटली सैनिकों का मुकाबला किया, वह अप्रतिम थी। शत्रु सैनिकों के अत्याचार से कमज़ोर पड़ कर वह कहीं अपना मुँह न खोल दे, इसलिए अंत में उसने अपनी जीभ ही काट डाली। कहते हैं – **''लाइना आज नहीं है, पर अबिसीनिया के उस चौराहे पर खड़ा उसका ऊँचा स्टैच्यू आज भी लाइना के उत्सर्ग की प्रसादी विश्व के युवकों को बाँट रहा है। उसकी इस प्रसादी में .....कर्त्तव्य की भावना है, उत्सर्ग की उज्ज्वलता है, सजीवता का संदेश है, लक्ष्य के लिए...आन के लिए, मरमिटने की प्रेरणा है और इन सबसे बढ़कर युवकों के लिए आज़ादी की कीमत का ऐलान है। लाइना मरकर भी अमर है और उसका दान विश्व के जीवन–कोष की बहुमूल्य निधि है।**''[10]

उन्नीसवीं शताब्दी में ईरान में स्त्रियों की दशा गुलामों से भी बदतर थी तब एक स्त्री–ताहिरा ने ईरान की शाही मस्जिद में जुमे की नमाज़ के बाद सिजदे में उठकर विरोध का स्वर उठाया था। उसने बुरके के भीतर से ही सबको संबोधित किया आप लोग सभी नमाज़ पढ़ रहे थे, पर संसार भर में फैले इंसान और इंसान के बीच एकता की, भाईचारे की शपथ ही तो नमाज़ है। आपने खुदा के सामने सिजदे किए, पर खुदा कहाँ है? वह किताबों में नहीं है, आज धर्म–स्थानों पर स्वार्थियों का कब्ज़ा है, यहाँ हम शैतान को पा सकते हैं, खुदा को नहीं। मेरी बात झूठ है, तो मैं पूछती हूं कि खुदा के इस पवित्र राज्य में ये एक तरफ ग़रीब क्यों हैं? ये एक तरफ अमीर क्यों हैं?

क्या कहते हो तुम कि औरतों में आत्मा नहीं होती? और क्या कहते हो तुम कि औरतें सिर्फ़ भोग–विलास की चीज़ें हैं? ग़लत, धोखा, बेईमानी और सरासर झूठ..... |''[11]

कहते हैं यह सब इतना आकस्मिक हुआ कि वहां उपस्थित हुजूम सकते में आ गया।... इस आवाज़ उठाने वाली ताहिरा नाम की युवती को ज़जीरों से बांधकर एक अंधेरे कमरे में बंद कर, भूखे रखकर कोड़ों से पीटा गया पर वह डिगी नहीं, जुल्म के खिलाफ़ डटी रही। उसका जुलूस निकाला गया और लोगों की भीड़ के सामने खच्चर की पूंछ से उसके पैरों को बांध कर उसे सड़क पर बेरहमी से खसीटा गया और फिर जीती जागती ताहिरा को चौराहे पर चिता सजाकर उसमें जला दिया गया। इस तरह समाज के लिए मनमाने नियम बनाने वाले ठेकेदारों ने अपने विरोध में उठी साधारण जन की आवाज़ों को समय–समय पर यूं ही दबाया है।

ग्रीस में भी इसी तरह जुल्म और शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलंद की–एक 21 वर्ष की नवयुवती – हेलेना मेट्रोपोलेस ने। उसके द्वारा की क्रांति विफल हो गई तो उसकी लाश को जंगल के एक कोने में अपमान पूर्वक फेंक दिया गया था।

सोलहवीं शताब्दी में रोम में जन्मे ब्रूनों ने भी तत्कालीन व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ उठाई और पूरे यूरोप में घूम–घूम कर उसने अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रचार प्रसार किया पर अंततः एक मित्र की गद्दारी के कारण उस महान दार्शनिक को धर्म के ठेकेदारों द्वारा जीवित जला दिया गया था।

इनके अतिरिक्त अपने–अपने जीवन में शोषण के खिलाफ़ लड़ने वाले, अपनी आन–बान की रक्षा की खातिर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले कुछ अन्य साधारण जनों की मार्मिक कहानियाँ भी लेखक ने शब्दबद्ध की हैं, जिनमें 'जेल की उन डरावनी दीवारों में!'' में सहारनपुर की हाजिरा का प्रसंग, 'पेरिस झील की उस भयानक संध्या में!' में पेरिस के मॉरिसेट और सोवेज़ का प्रसंग, 'मानवीय पशुता की उस बाढ़ में!' में अकीला बेगम का प्रसंग, 'झूठ के उस कड़वे धुएं में' में भारत में कार्यरत एक अंग्रेज अधिकारी कनिंघम का प्रसंग, 'पहाड़ की उन चोटियों से नीचे!' में गरीब बुधारू और पुनिया का प्रसंग, 'प्रतिहिंसा के उन पावन क्षणों में!' में रामभज का प्रसंग, अत्यंत भावपूर्ण ढंग से लेखक द्वारा कहे गए हैं।

ये सत्रह शब्दचित्र बलिदान और शहादत की वे अनकही कहानियाँ हैं जो इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम अक्षरों में लिखी गई या नहीं पर जानकार लोगों के

हृदयपटलों पर अवश्य सदा–सदा को खुद गई और जो इनसे अनजान हैं लेखक उन हृदयों पर भी इनकी छाप चाहता है तभी उसने देश की हर नई पीढ़ी को यह पुस्तक पढ़ने की आकांक्षा भी की है, प्रेरणा भी दी है।

संदर्भः

1. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 7
2. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 38
3. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 48
4. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 102
5. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 105
6. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 107
7. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), **पृ. 93**
8. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 99
9. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 21
10. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 32
11. माटी हो गयी सोना – कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (लेखक), पृ. 41